हबीब तनवीर कृत 'आगरा बाज़ार' : बाज़ार की संस्कृति में मानवीय संवेदना का नाटक

डॉ. अवधेश झा

नाटक मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का सबसे प्राचीनतम जीवंत और सशक्त कलात्मक माध्यम है, जो अन्य विधाओं के सापेक्ष सामाजिक–राजनैतिक अन्यादी विषमताओं को लोकतांत्रिक रंग–प्रक्रिया के द्वारा, दिग्दर्शक समक्ष प्रस्तुत करता है। दरअसल नाट्य साहित्यिक–कलात्मक विधागत माध्यम है, जिसका स्वरूप दृश्य–श्रव्य युक्त है। नाटक रंगमंच पर मानवीय मूल्यों की संवेदना को नाटककार, निर्देशक, अभिनेता और दर्शकों की जनतांत्रिक साझेदारी द्वारा अभिव्यक्त करती है। गौरतलब है कि नाट्य साहित्य का निहितार्थ ही मनुष्य व मनुष्यत्व केन्द्रित विभिन्न परिस्थितियों का कोना–कोना झांकना और उसे 'असल की नक़ल व नक़ल की असल' द्वारा संप्रेषित करना है। गौरतलब है कि सम्पूर्ण भारतीय नाट्य परम्परा का विकास लोकचिंता और लोकमंगल की आधारभूमि पर पुष्पित और पल्लवित हुआ है। जिसके रचनागत मूल्यों में नाट्यधर्मी व लोकधर्मी परम्परा का विकास दृष्टिगोचर है। नाट्यशास्त्र प्रणेता भरतमुनि ने नाट्य सृजन की व्यापकता, गहराई व उसकी प्रतिबद्धता को संकल्पित करते हैं कि "मैं नाट्य नामक ऐसे पाँचवें वेद की इतिहास सहित रचना करता हूँ जो धर्म और अर्थ की प्राप्ति कराने वाला, यश:प्रदाता, उपदेश तथा संग्रह से युक्त, भावी जगत के लिये सभी कार्यों का पथ प्रदर्शक, सब शास्त्रों के अर्थों से परिपूर्ण और सभी शिल्पों को प्रदर्शित करने वाला होगा।"[1] जाहिर तौर यह नाट्य कला सामुदायिक सहभागिता और साझेदारी की जनतांत्रिक विधा है, जिसमें जन जीवन संस्कृति के मानवीय मूल्यों के हितों की रक्षा और प्रतिबद्धता साफगोई से झलकती है। जिसके बाबत मैनजर पाण्डेय लिखते हैं– "साहित्यिक रूपों की संरचनाओं के निर्माण में सामाजिक रचनाओं, संबंधों और जीवन मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव नाटक और रंगमंच के इतिहास में दिखाई देता है। नाटक दूसरी साहित्यिक विधाओं की तुलना में अपने सामाजिक संदर्भ से अधिक गहराई से जुड़ा होता है, इसलिए उसमें सामाजिक सम्बन्धों की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है। वैसे नाटक सामाजिक जीवन की समग्रता का ही प्रतिरूप होता है, इसलिए अपने समय की सामाजिक वास्तविकताओं के बिम्ब और प्रतिबिम्ब अधिक मुखर होते हैं।"[2]

समकालीन समाज और संस्कृति में जन की जीवनानुभूति सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न परिस्थितियों में जटिल से जटिलतम हुई है। मनुष्य के निजी व निकटतम संबंधों के बीच भय, संत्रास, कुंठा, हताशा, अनास्था आदि युगजनित संक्रमित दबावों ने मानवीय मूल्यों की संवेदना को भोथरा कर दिया है। यह दबाव स्वेच्छावश मनुष्य ने ग्रहण नहीं किया बल्कि इसके पीछे तमाम कारणों का ऐतिहासिक

[1] नाट्यशास्त्र: भरतमुनि: प्रथामोऽ ध्याय:14–15, पृष्ठ संख्या– 5–6

[2] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका: डॉ. मैनजर पाण्डेय, पृष्ठ संख्या– 213–14

स्खलन दृष्टव्य है। जहाँ मनुष्य अपनी सहज–स्वाभाविक स्थिति को दरकिनार कर, कृत्रिमता के प्रवाह में बहता जा रहा है। जिसके चलते मनुष्य का चारित्रिक जीवन इतना जटिल हो गया है कि उसने सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश में मूर्त–अमूर्त मुखौटे धारण कर लिए हैं और उसके अंतर्मन–बहिर्मन के असंख्य रूप हो गये हैं। जिसमें उसकी नियत नियति अस्पष्ट तथा द्वंद्वात्मक हो गयी है। ऐसी विद्रूप परिस्थितियों में साहित्य व साहित्येतर रूपों में बदलाव जायज़ है। परिणामतः परम्परागत तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सर्जनात्मक, साहित्यिक व कलात्मक कृतियाँ, अपने मूलभूत संरचना में वाज़िब परिवर्तन करतीं हैं और प्रगतिशील विचाराधारित युगानुरूप तत्वों को समाहित करते हुए, जन की मूल संचेतना तक पहुंचतीं हैं। जिसमें जन जीवन मूल्यों की मानवीय संवेदना अंकित एवं चित्रित होती है।

दरअसल साहित्य का सामाजिक दायित्व यांत्रिक–भौतिकवादी वातावरण में मनुष्य और मनुष्यत्व के बीच आये अंतराल को समंजनशील–अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में संवेदित करना है। अपने परिवेशगत युगबोधीन यथार्थ की जटिलता में, साहित्य समाजोन्मुख व साहित्योन्मुख विविध समसामयिक संदर्भों की तलाश और पड़ताल करता है। गौरतलब है कि साहित्य का अपना निजी गुण, धर्म, शील, स्वभाव, साहित्यकार के अपने जातीय स्मृति–बोध काल सापेक्ष इतिहासबोध की दृष्टि से निर्वहित होता है। जो रचनात्मक, कलात्मक व सृजनात्मक कर्म के लिए उत्प्रेरित करता है। जहाँ लोक–सम्पृक्ति का भाव ही प्रबल होता है। चूँकि आत्म संघर्ष की मुक्ति, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निहित है इसलिए वह 'स्व' की आत्मभूमि से परे, मानवीय संवेदना की गाथा को जन समक्ष संप्रेषित करता है। दरअसल जन सामान्य के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के संघर्ष, भंगिमाओं व मुद्राओं को साहित्य के अन्यान्य विधा रूपों में अनुभूत किया जाता है।

हिंदी नाटक और रंगमंच के संवेदनात्मक इतिहास में भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश व लक्ष्मीनारायण लाल आदि के समानांतर ही हबीब तनवीर के नाटकों में लोक हेतु जनवादी विचारधारा समाहित है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य इतिहास में हबीब तनवीर (1 सितम्बर, 1923–8 जून, 2009) एक अदम्य रंग जिजीविषा का नाम है। जिसके व्यक्तित्व में एक शायर, अभिनेता, निर्देशक, नाटककार, समीक्षक और संस्थापक की गुरुता समाहित है। इनके नाटक भारतीय रंग जगत के लिए मील का पत्थर साबित हुए हैं। इनकी सृजनात्मक प्रतिबद्धता जनवादी नाट्य चेतना से संपृक्त है। जो लेखन व मंचन की प्रकिया में, लोक शैली– नाचा, पंथी, पंडवानी, जवारा, चंदैनी, लोक कथा, नृत्य, गीत व लोक भाषा से 'टोटल थियेटर' का रंग मुहावरा सिरजते हैं।

हबीब तनवीर का नाटक 'आगरा बाज़ार' शायर नज़ीर अकबराबादी के जीवन वृत्त पर आधारित है। जिसका प्रदर्शन सन् 1954 ई. में दिल्ली के ओखला स्थित जामिया मिलिया इस्लामिया में किया गया। इसमें

70 के करीब पात्रों ने अभिनय किया था और यहीं से उन्हें हिंदी नाट्य जगत में प्रतिष्ठा मिली। नाट्य प्रशिक्षण हेतु राडा जैसे विदेशी संस्थान की शिक्षा को अधूरा छोड़कर देशी मिट्टी से उपजी भारतीयता के तलाश में, मिट्टी की गाड़ी के रचनात्मक प्रक्रिया के दौरान मोनिका मिश्र से हबीब तनवीर की मुलाकात हुई और विवाहोपरांत 'नया थियेटर' की स्थापना सन् 1959 ई. में की। जिसके माध्यम से उन्होंने छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों और लोक शैली नाचा आदि के प्रयोग द्वारा हिंदी नाट्य में नये रंग परिवेश के मुहावरे को सृजित किया। नया थियेटर के माध्यम से उन्होंने लगभग 60 से भी ज्यादा नाटक खेले हैं। उनकी इस अनवरत नाट्य यात्रा हेतु देवेन्द्र राज अंकुर लिखते हैं– "भारतीय रंगमंच में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व रंगमंच में ऐसे किसी रंग निर्देशक की मिसाल मिलना मुश्किल है जिसने लगातार एक ही दिशा में एक ही तरह का एक ही नाट्य दल के साथ और अंततः एक ही अभिनेताओं के समूह के साथ लगभग पचास साल तक रंगकर्म किया हो और अभी भी उतना ही सक्रिय है। वह निर्देशक है – हबीब तनवीर। ..यह काम के प्रति ..लोगों के प्रति और संस्था के प्रति प्रतिबद्धता ही वह धुरी है, जिसके चारों तरफ हबीब तनवीर की रंग यात्रा का इतिहास फैला हुआ है।"[3]

'नया थियेटर' सन् 1973 ई. तक एक पूर्णतः शक्तिशाली व्यावसायिक थियेटर बन गया था। जिसमें हबीब तनवीर का जनवादी रंग व्यक्तित्व और मानवीय संवेदना अभिव्यक्त होता है। जहाँ निर्देशकीय कौशल, अभिनय की गंभीरता, शायर/कवि का सहृदय, नाटककार का सामाजिक लोक चिंतन, मौलिकता, लोककथा के नाट्य प्रयोग, अनुदित और रूपांतरित नाटक का लेखन और निर्देशन शामिल है। उनकी रंग समग्रता पर जयदेव तनेजा का कहना है कि "भारतीय रंग अस्मिता के पुनरावेषण, क्लासिकी और लोक–रंग–तत्वों के अनिवार्य अन्तःसूत्रों के कल्पनाशील प्रयोग और अपनी देशज विरासत की मौलिक ऊर्जा को अधिक परिष्कृत और विस्तारशील बनाने वाले अनूठे रंगकर्मी हबीब तनवीर के समस्त नाटकों की मूल धुरी 'मनुष्य' है। आम आदमी के दुःख–सुख, आस्था–विश्वास और अनंत संघर्ष की जैसी सहज, सरल, आत्मीय, विश्वसनीय और प्रभावशाली अभिव्यक्ति आपके नाटकों में हुई है– वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[4] उनकी जनवादी चेतना साम्राज्यवादी–पूंजीवादी नीतियों का प्रतिकार व विरोध करती हैं और जन सामान्य को इनसे सचेत एवं सतर्क करती है। वस्तुतः यह जनवादी सरोकार अपनी समसामयिकता से जुड़कर व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध व हस्तक्षेप का नाम है। "क्रान्ति उसका लक्ष्य है। शोषक वर्ग से जूझने वाले समाज के निर्माण में योगदान देना जनवादी नाट्यकार का प्रमुख उद्देश्य रहता है। ..नित नया विचार, नया उद्देश्य, नया कथानक, नया शिल्प उसके संबल हैं। जनहित उसका लक्ष्य है।"[5] हबीब तनवीर सामाजिक–सांस्कृतिक रूप से जन पक्षधरता को अपने नाटकों में

[3] पहला रंग : देवेन्द्र राज अंकुर, पृष्ठ संख्या–79

[4] आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य: जयदेव तनेजा, पृष्ठ संख्या–52

[5] हिंदी नाटक : उद्भव और विकास: डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ संख्या–366

प्रस्तुत करते हैं। जिसमें जीवन की जटिलता, विसंगति, अंतर्विरोधों का समन्वय व इतिहास बोध का संज्ञान होता है। उनकी रंग चेतना समकालीन जीवन और समाज में हस्तक्षेप का प्रतिरोध दर्ज कराती है। "उनके सभी नाटकों में राजनीति है, राजनीतिक पक्ष है, वर्ग दृष्टि है, शोषित पीड़ित जनता का पक्ष है, धर्म निरपेक्ष चरित्र है, शोषकों पर हंगामा है, उन पर मजाक है, व्यंग्य है, अपने समूचे निहितार्थ में हबीब साहब के नाटक राजनीतिक रंगमंच का निर्माण करते हैं। "[6] हबीब तनवीर के नाटक व्यवस्था की अव्यवस्था या अव्यवस्था की व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं, जिसमें लोक रंग परंपरा की शैली का तेवर है। जो लोक गीत, लोक धुन, लोक भाषा, बोली, लोक नृत्य शैली की समग्रता का सामंजस्यपूर्ण विधान है।

आगरा बाज़ार समग्रता की रंगश्रेणी का नाटक है, जो हबीब तनवीर के लेखन और निर्देशन से उभरकर प्रत्यक्ष होता है। यह नाट्यालेख आगरे के मशहूर शायर नज़ीर अकबराबादी के जीवनानुभूति से संपृक्त है। सन् 1810 ई. के नज़ीर अकबराबादी की नज़्मों से तैयार नाटक में औपनिवेशिक काल के मानवीय जीवन मूल्यों पर बाज़ार की संस्कृति किस कदर हावी थी, उसका दिग्दर्शन होता है। नाटक 'आगरा बाज़ार' सन्1954 ई. में अथर परवेज के कहने पर लिखा और मंचित किया गया। गौरतलब है कि नज़ीर अकबराबादी एक मानवतावादी शायर थे और उनका जीवन काल संक्रमण ग्रस्त था। नाटक 'आगरा बाज़ार' बाज़ार की संस्कृति के बरक्स मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त करता है। जहाँ औद्योगिक इकाई, अर्थ व्यवस्था की दुर्दशा आदि को शोषित, दिशाहारा जन की परिस्थिति तथा आगरे की संस्कृति में गंगा–जमुनी तहज़ीब की परम्परा कायम है। "यह नाटक अपने कथ्य एवं फार्म में उतना ही ताज़ा है। दरअसल यह शुद्ध अर्थों में नाटक ही नहीं है। आगरा के मशहूर शायर नज़ीर अकबराबादी के १६ नज़्मों के माध्यम से तत्कालीन समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण का डाक्यूमेंटेशन किया गया है.....हबीब तनवीर ने यहाँ किसी प्रदेश विशेष की लोक शैली का इस्तेमाल नहीं किया था बल्कि कथा की सामाजिकता में से वह शैली अपने आप ही उभर कर सामने आ गई। ककड़ी, पतंग, चूहा, बंदर, वेश्या, छैला – इन विविध विषयों पर लिखी गई नज़्मों ने स्वयं ही नाटक को लोक–भूमि से जोड़ दिया ।"[7]

हबीब तनवीर ने नाटक के कथानक को चार हिस्सों में बाँटा– "१. अवाम का इफ़लास और बेरोजगारी। २. अदीबों का तसाहुल, ताअस्सुब और ज़िन्दगी से फरार। ३. छोटे पेशावरों ने 'नज़ीर' की मकबूलियत। ४. नज़ीर का पैगाम ।"[8] आगरा बाज़ार नाटक दो अंकों में विभक्त है, जिसमें पहले दृश्यांक से लेकर दूसरे दृश्यांक तक ककड़ी वाले की कथा है। नज़ीर के नज़्म बाज़ार के हालत और हालात को दर्शाते हैं। देश में व्याप्त

[6] कलावार्ता– सम्पादकीय, अंक–103, पृष्ठ संख्या–2

[7] अंतरंग बहिरंग: देवेन्द्र राज अंकुर, पृष्ठ संख्या–139

[8] आगरा बाज़ार: हबीब तनवीर, पृष्ठ संख्या–113

भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी पर वाज़िब सवाल पर कार्यवाही भी करती है। नाटक के सभी पात्रों का नज़ीर से सम्बन्ध है क्योंकि उनके नज़्मों में जन सामान्य के प्रति संवेदना का भाव गहरा है। जो बाज़ार की संस्कृति में ककड़ीवाले आदि के माध्यम से बाज़ारवाद को परिभाषित करने की कोशिश है। उनकी रंगधर्मिता का सशक्त माध्यम बाज़ार ही है। "यह स्पेस, किसी का निजी स्पेस नहीं था बल्कि बाज़ार था, जिसमें बाज़ार का शोरोगुल था, प्रतिस्पर्धा थी और साथ में वे सभी सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक ध्रुव भी थे जो समाज में होते हैं। यह नाटक उस कविता को भी बिलकुल सामने रखता था जिसमें अभिव्यक्ति की रोजमर्रा की जद्दोजहद और ज़िन्दगी थी। अपनी प्रस्तुति में यह नाटक न सिर्फ़ आम जिन्दगी से प्रेरणा लेता था बल्कि आम आदमी से मुखातिब भी होता है। ...इस तरह के नाटक अपने प्रस्तुतिकरण में जिन्दगी की खुशियों का वह उत्सव दीखता था, जिसे मिखाइल बाख्तिन ने 'बाज़ार की संस्कृति' कहा था। "[9]

प्रथम अंक में दो फ़कीर नज़ीर की कविता सहर आशोब गाते हुए मंच पर आते हैं। जिसमें शहर की दुर्दशा और तत्कालीन परिवेश का चित्रण मिलता है। बेकारी और तंगी के दौर में फकीरों के सुर में ये गीत "जब आगरे की खल्क का हो रोज़गार बन्द ..रोज़ी के अब दरख्त का मिलता नहीं है पात।"[10] औपनिवेशिक सत्ता के चरित्र को बख़ूबी दर्शाता है। सर्वविदित है कि अंग्रेजी हुकूमत ने भारतीय उपमहाद्वीप की व्यवस्था को अव्यवस्थित किया। और स्वरोजगार के साधनों पर चोटकर भारतीयों के जीवन में आर्थिक तंगी ले आएँ। बाज़ार की संस्कृति के रूप अंधेर नगरी, देख रहे हैं नैन, एक सत्य हरिश्चन्द्र और कबिरा खड़ा बाजार में भी दृष्टिगत है। इनके सामानांतर 'आगरा बाज़ार' की संस्कृति आपसी सौहार्द, छोटी–मोटी नोंकझोंक तथा प्रेम को लेकर विकसित हुई। नाटक में हबीब तनवीर ने रोज़ी–रोटी के लिए चिंतित जनता का मानवीयकरण किया है। ककड़ीवाले से लड्डूवाले की नोंक झोंक में आर्थिक तंगी से परेशान सारा बाज़ार दीखता है। नाटक में मदारीवाले को बन्दर के साथ करतब दिखाते हुए तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेशगत अव्यवस्था की राजनीति में हस्तक्षेप समझा जा सकता है।

"अच्छा, अहमद साह अब्दाली दिल्ली पर कैसे झपटा था? (बन्दर लाठी लेकर मारता है) हॉय, हॉय...तुम तो सारे हिन्दुस्तान को रौंद डालोगे– बस करो मियाँ, ...अच्छा बताओ, फिरंगी हिन्दुस्तान में कैसे आया था? (बंदर भीख माँगने की नक़ल करता है.... (बन्दर लेट जाता है) लोगबाग भूख से मर गया था। और हमारा कैसा हालत है? (बन्दर गिर जाता है)"[11]

[9] हबीब तनवीर: एक गाथा पुरुष का बनना–जावेद मलिक, कलावार्ता: अंक–103, पृष्ठ संख्या–142

[10] आगरा बाज़ार: हबीब तनवीर, पृष्ठ संख्या–47

[11] वही, पृष्ठ संख्या–51

नाटक में भूख की बेचैनी आर्थिक तंगहाली, मुफ़्लूसी के दौर को फ़क़ीरों के गीत बखानते हैं 'मुफ़लिस की कुछ नज़र नहीं रहती आन पर x x जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं एक उस्तख़्वान पर' लगता है कि एक सभ्य शायर ने बाज़ार की मासूमियत को और भी गहरा रंग दे दिया है। इनके नज़्मों में वर्ग विशेष की मानसिकता और सर्वहारा हित में होने वाले जुगालीनुमा बौद्धिक विमर्श की चुटकी ली गयी है। यह नाटक अपने सम्पूर्ण कथानक के मूल में रोटी, कपड़ा और मकान की बुनियादी समस्याओं को रेखांकित करता है। "ककड़ीवाला : सवाल मेरे पेट का है, हुजूर। ककड़ी बेचूंगा और सारी उम्र आपको दुआएँ दूंगा । ..x x ..आप तो गरीब आदमी का मज़ाक उड़ाते हैं। शायर : भई, साफ़ बात यह है कि ककड़ी जैसे हसीं मौजू पर जब तक कोई पाए का शायर जोर–आज़माई न करे हक़ अदा न होगा, और हम ठहरे नौ–मस्क। इसलिये हमारे बस का तो यह रोग है नहीं ।"[12] नाटक में ककड़ीवाला ऐसा पात्र है, जिसकी तंगहाली और जीवन संघर्ष के बीच नज़ीर के नज़्म नाटक की सार्थकता का कारण बनते हैं। सामाजिक वर्ग की मानसिकता को नाटक, पात्र और नज़्मों के माध्यम से कथानक में अभिव्यक्त करता है। नज़ीर की शायरी के साथ भूत, वर्तमान और भविष्य की चिंता ककड़ीवाला भी करता है। विकास और प्रगति के दौर का भी चित्रण नाटक में साहित्यिक–सांस्कृतिक स्पेस को विमर्श के विविध दायरे में ले आता है। जिसमें बाज़ार की संस्कृति के चलताऊपन को पकड़ने की कोशिश भी है।

इस नाटक में साम्प्रदायिक सौहार्द की झलक देखने को मिलती है। नाटकीय दृश्य में बाज़ार की सजीवता को बलदेव जी के मेले और सिखों की टोली 'मदह गुरुनानक' कविता का गायन करते हैं। "हैं कहते नानक शाह जिन्हें वह पूरे हैं आगाह गुरु / वो कामिल रहबर जग में हैं, यूँ रोशन जैसे माह गुरु / x x तथा रंग है, रूप है, झमेला है / जोर बलदेव जी का मेला है ।"[13] बाज़ार का दृश्य ही नाटक की कथावस्तु और कार्य व्यापार का स्थान है। बाज़ार की पूर्ण संस्कृति में बेनज़ीर (वेश्या) और शोहदे के माध्यम से बाज़ार को इश्क का नगर कहा जा सकता है। किताबवाले की दुकान पर मीर को आज के साहित्यिक मुद्दों के मार्फ़त जोड़ा गया है। मौलाना, नवीस शायर – हमजोली के संवादों से ज्ञात होता है कि इन ठेकेदारों के नज़र में नज़ीर की मानवतावादी शायरी का कोई अर्थ नहीं है। दरअसल आगरा बाज़ार नाटक का कथानक आज़ादी की पहले की कथा कहता है किन्तु अपने कलात्मक रूप में वह आज के समय को भी व्यक्त कर रहा है।

बाज़ार की संस्कृति एक नाटकीय विडम्बना का रूप है, जहाँ किताब वाले उक्ति गहरी पैठ जाती है कि उनके कलाम करीमन हिजड़ों का समूह, बर्तनवाले रोजगारी में गुनगुनाते हैं। "हिजड़े : एक रोज मुँह में कान्हा ने माखन झुका दिया x x क्या–क्या कहूँ मैं किशन कन्हैया का बालपन ।"[14] वास्तव में नज़ीर एक

[12] आगरा बाज़ार : हबीब तनवीर, पृष्ठ संख्या–57–58

[13] वही, पृष्ठ संख्या–66–68

[14] वही, पृष्ठ संख्या–72–73

सांस्कृतिक प्रतिरोध को व्यक्त करने वाले शायर हैं। उनकी कविता समाज के हित में होती है और सत्ता व शोषण को चित्रित तथा अपने प्रतिरोध को दर्ज़ करने के लिए चूहों को व्यंग्यात्मक तरीके से प्रयोगकर, राजनीतिक चेतना पर प्रहार करती हैं। 'फिर गर्म हुआ आंके बाज़ार चूहों का / हमने भी किया ख्वानचा तैयार चूहों का ।' लोगों को चिंता इस बात की हो रही है कि नज़ीर अच्छे खानदान से सम्बन्ध रखते हैं, उनके नज़्म दलित–दमित, बेकार व पिछड़े लोग प्रयोग कर रहे हैं। नाटक में शोहदे और बेनज़ीर के प्रेमालाप को जगह दी गयी है। शोहदा और दरोगा में झड़प होती है और भ्रष्ट तंत्र की शिनाख़्त होती है। दरोगा और बेनज़ीर के संवाद दृष्टव्य हैं "दरोगा : ज़रा एक बात सुनो; क्या अंदर आने की इजाज़त नहीं? बेनज़ीर : सर–आँखों पर, लेकिन इस वक्त मेरी तबीयत नासाज़ है। x x बेनज़ीर : जानते नहीं शहर का दरोगा है। आप भी कमाल करते हैं। शोहदा : दरोगा है तो क्या मुझे घोलकर पी जाएगा।"[15] नाटक में बिना किसी कसूर के ही दरोगा ककड़ीवाले को सनक की हनक में पकड़ लेता है। दृश्यान्त में फिर फ़कीर नज़ीर का कलाम 'पैसे ही का अमीर के दिल में ख्याल है।..पैसा न हो तो आदमी चर्खे की माल है।' नाटक में उपस्थित बाज़ार की संस्कृति मानवीय मूल्यों और उसकी संवेदना को प्रकट करता है।

आगरा बाज़ार का दूसरा अंक पहले अंक की पूरकता को बरक़रार रखता है। ककड़ीवाले के साथ ही कामगार, तरबूज़वाले, लड्डूवाले भी नज़ीर के नज़्मों की सहायता से रोज़ी रोटी में इजाफा कमाने लगते हैं। पतंगवाला अपने तर्कों के मार्फ़त नज़ीर को लोक शायर सिद्ध करने में लगा रहता है। दरोगा और बेनज़ीर की लड़ाई खत्म हो जाती है। नज़ीर के नज़्म आदमीनामा और बंजारानामा में निहित अर्थ कथानक की मार्मिकता को बांधे रखते हैं। मानवतावादी दृष्टिकोण में ये नज़्म आम आदमी का संबल बनती है तथा अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करती हुई कविता शोषक के खिलाफ और शोषित के साथ है। "सब ठाट पड़ा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बंजारा।"[16] नाटकीय दृश्य में सुबह का समयांतराल है, ककड़ीवाले और उसके साथी सिपाहियों की गश्त से परेशान हैं लेकिन किताबवाले के यहाँ लोगों की भीड़ लगी हुई है तथा समकालीन शायरों पर चर्चा हो रही है। हमीद उनके बीच 'कासिद, तू मेरा नाम तो लीजो न व लेकिन / कहना कोई मरता है तेरा चाहने वाला ।' नज़ीर की ग़ज़ल कहता है और हमजोली इसे जमीनी हकीकत से जुड़ा हुआ नज़्म करार देता है। ऐसा लगता है कि पतंगवाला और हमीद, नज़ीर की ग़ज़लों द्वारा कविता का रंगमंच प्रस्तुत कर रहे हैं। जिसके काव्यदर्शन को हबीब तनवीर एक अंधे भिखारी तक, धार्मिक सहिष्णुता के रूप में चिह्नित करते हैं। वह भिखारी महादेव के

[15] आगरा बाज़ार: हबीब तनवीर, पृष्ठ संख्या–78–79

[16] वही, पृष्ठ संख्या–83

व्याह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत को गाता है। "अँधा भिखारी : पहले नाव गनेश का लीजे सीस नवाए / जासे कारज सिद्ध हों, सदा महूरत लाए ।"[17]

नाटक में पात्र बेनी प्रसाद, पतंगवाले का मित्र है, वे एक अजनबी मंजूर साहब जोकि नज़ीर के करीबी हैं, उनके हैदराबाद से वापस लौटने पर गमज़दा है। दोनों ही इस बाबत अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। इसी बीच नज़ीर की नवासी को पतंगवाला बुलाता है और मदारी 'कल राह में जाते मिला रीछ का बच्चा' गाते हुए बाज़ार से गुजर जाता है। नज़ीर आम जनता के लिए बहुत कुछ थे "सब किताबों के खुल गए मानी। / जब से देखी 'नज़ीर' दिल की किताब"[18] देखा जाय तो कबीर की कविताई की तरह उस समय के परिवेश में नज़ीर की कविता जन की बात करती है। 'ढाई आखर प्रेम का / पढ़ै सो पंडित होय ।' आगरा बाज़ार नाटक में ककड़ीवाले को अपने दुखों से निजात नज़ीर के नज़्म ही देते हैं । ककड़ी पर शेर लिखवाने की सलाह पतंगवाला देता है, जिसमें उनकी लोकप्रियता झलक पड़ती है कि मियाँ नज़ीर से बेहतर कौन आदमी मिलेगा। नज़ीर ने ककड़ी पर कविता लिखकर आभिजात्य संस्कृति पर प्रतिरोध तो दर्शाया ही वहीं, आम आदमी के साथ खड़े भी हुए।

"क्या प्यारी–प्यारी मीठी और पतली–पतलियाँ हैं / गन्ने की पोशियाँ हैं, रेशम की तकलियाँ हैं । / फरहाद की निगाहें, शीरी की हंसलियाँ हैं,/ मजनूं की सर्द आहें, लैला की उंगलियाँ हैं । / क्या खूब नर्मो–नाजुक इस आगरे की ककड़ी/ और जिसमें खस काफिर इसकन्दरे की ककड़ी ।"[19]

इस तरह तरबूजेवाले से लेकर लड्डूवाले तक नज़ीर के नज़्म बेकार–बेरोजगारों के हाथ काम आते हैं। नाटक के दृश्यान्त में बेनज़ीर के कोठे पर दरोगा आराम फरमा रहा होता है। बेनज़ीर अपने पेशे की रवायत में प्रेम में पगे मंजूर हसन के लिए पान लगाती हुई दीख पड़ती है। नाटक में मानवीय दृश्यों की रंग परिकल्पना हबीब तनवीर साहब ने बख़ूबी आदमीनामा नज़्म से की है, जिसे हबीब तनवीर आम आदमी की जिन्दगी की लाचारी और उसके मनुष्य बने रहने के प्रेरक रूप को प्रतिरोध और युगबोध के सम्मिश्रण से उकेरते हैं। जिसमें समसामयिक परिवेश की फांक भी मिलती है। "दुनिया में बादशाह है सो वह भी आदमी / और मुफलिसों गदा है सो है वह भी आदमी x x याँ आदमी मुरीद है, और आदमी ही पीर / अच्छा भी आदमी ही कहाता है ऐ 'नज़ीर'"[20]

[17] वही, पृष्ठ संख्या–93

[18] आगरा बाज़ार: हबीब तनवीर, पृष्ठ संख्या–100

[19] वही, पृष्ठ संख्या–106

[20] वही, पृष्ठ संख्या–108–109

आम आदमी की ज़रूरतों को समझते हुए उसकी लोक चिंता एवं लोक मंगल की कामना में आगरा बाज़ार का सेट टप मिलता है। प्रसिद्ध नाट्य समीक्षक नेमिचंद्र जैन का कथन है "इसमें आगरा के उर्दू कवि नज़ीर के रचनाओं के सहारे उनके व्यक्तित्व और उस ज़माने की आम ज़िन्दगी की एक तस्वीर पेश करने की कोशिश की है। रूप बन्ध की दृष्टि से नाटक शिथिल, लगभग आकारहीन होने पर भी उसके अलग–अलग चरित्रों और बहुत सामान्य छोटी–छोटी घटनाओं के द्वारा रोजमर्रा की ज़िन्दगी का खट्टा–मीठा सारा अनुभव संप्रेषित हो जाता है, यह नाटक की, ऊँच–नीच तथा भेदभावों से हटकर आपसी बराबरी और भाईचारे की भावना को उभारता है। कविता और कला की ज़िन्दगी के साथ जुड़ने और प्रासंगिक होने पर जोर देता है और सृजनात्मक अभिव्यक्ति की भाषा को बोलचाल की भाषा के पास लाने की ज़रूरत को भी दिखाता है।"[21] देखा जाय तो आगरा बाज़ार के प्रसंग में नो थीम, नो प्लाट या कथानकविहीन नाटक कहा जाता हो किन्तु मोटे तौर पर रंगमंच के प्रचलित यथार्थवादी मुहावरे के संदर्भ में सहज और परिचित से लगते हैं। जिसे पाश्चात्य नाट्य सिद्धांत नाटक ही नहीं मानेंगे। अंकुर जी का मंतव्य है कि "जब पचास के दशक में हबीब तनवीर ने आगरा बाज़ार की पहली प्रस्तुति की तो किसी ने उसका इस बात के लिए नोटिस नहीं लिया कि जिस भारतीय रंगशैली की अपने देश को ज़रूरत थी, हबीब तनवीर ने इस नाटक के लेखन एवं प्रस्तुतिकरण के माध्यम से उस वक्त तलाश कर ली थी, ...क्या यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है कि जिस दौर में भारतीय रंगमंच पश्चिम के तथाकथित यथार्थवादी प्रभाव में लेखन एवं प्रस्तुति के स्तर पर सक्रिय था, उसी क्षण हबीब तनवीर ने अपने नाट्य दल के साथ एक ऐसी रंग शैली की तस्वीर पेश कर रहे थे, जो बाद में भारतीय रंगमंच में मील का पत्थर साबित हुई ।"[22]

हबीब तनवीर कृत आगरा बाज़ार में बाज़ार की उपभोक्तावादी संस्कृति और भौतिकतावादी जीवन के बीच मानवीय संवेदना और उसके मूल्यों की रक्षा नज़ीर के नज़्म करते हैं। एक शायर लोक में जीकर अपनी रचना को लोकोन्मुख बना देता है, जिस कारण वह अभिजात्यपन से मुक्त लोकहित की रक्षा करता है और जीवन के लिए संबल प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. जयदेव तनेजा (सन् 1992): आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य; तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002

[21] तीसरा पाठ: नेमिचंद्र जैन, पृष्ठ संख्या–165

[22] पहला रंग: देवेन्द्र राज अंकुर, पृष्ठ संख्या–81

2. डॉ. दशरथ ओझा (सन् 2006): हिंदी नाटक उद्भव और विकास; राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 110006
3. देवेंद्र राज अंकुर (सन् 1999): पहला रंग; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002
4. देवेंद्र राज अंकुर (सन् 2004): अंतरंग बहिरंग; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002
5. नेमिचंद्र जैन (सन् 1998): तीसरा पाठ; वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002
6. मैनेजर पांडेय (सन् 2006): साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका; हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला
7. हबीब तनवीर (सन् 2004): आगरा बाज़ार, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002
8. श्री बाबूलाल शुक्ल; शास्त्री (संपादक. एवं व्याख्या): नाट्यशास्त्र: भरतमुनि भाग1–3 (वि.सं. 2067); चौखंभा संस्कृत संस्थान, पोस्ट बॉक्स नं. 1139, के. 37/116, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी, 221001
9. स. कमला प्रसाद: कलावार्ता; अंक 103, वर्ष 21, मध्य प्रदेश कला परिषद, भोपाल, 462003

डॉ. अवधेश झा, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी